वेदान्त आश्रम की मासिक ई - पत्रिका
वेदान्त पीयूष
वर्ष २३ मार्च - २०२३ प्रकाशन - 03

वेदान्त पीयूष

वेदान्त मिशन की मासिक हिन्दी मासिक पत्रिका

मार्च 2023 / वर्ष 23 / प्रकाशन 03

प्रकाशक

वेदान्त आश्रम,

ई - २९५०, सुदामा नगर, इन्दौर - ४५२००९; मध्यप्रदेश

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

विषय सूचि

ॐ

सदाशिवसमारम्भाम्

शंकराचार्य मध्यमाम्

अस्मदाचार्य पर्यन्ताम्

वन्दे गुरु परम्पराम्

व्यापृतेष्विन्द्रियेष्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम्।
दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी॥

(आत्मबोध श्लोक 19)

अविवेकी अज्ञानवशात् मन और इन्द्रियों के कार्यकलापों को आत्मा पर अध्यस्त कर देते है, जैसे भागते हुए बादल को देखकर चन्द्रमा दौड़ता हुआ सा प्रतीत होता है।

पूज्य गुरुजी का सन्देश

साध्य–साधन निरपेक्ष ब्रह्म

साध्य-साधन निरपेक्ष ब्रह्म

एक मुमुक्षु जिस समय अध्यात्मपथ पर आरूढ़ होता है, तो उसे यह बात समझ में आती है, कि मुक्ति की अवस्था में जगने के लिए परमात्मा को प्राप्त करना है। किन्तु परमात्मा को कैसे प्राप्त करें? यह कैसे शब्द से पूछा गया प्रश्न उपर से तो अत्यन्त निर्दोष लगता है, किन्तु उसमें परमात्मा रूपी साध्य सम्बन्धी मोह छिपा हुआ है। साध्य सम्बन्धी निश्चय पर ही साधन की दिशा निर्धारित होती है। साध्य-साधन सम्बन्धी मोह जब तक बना रहता है, तब तक हम कितने भी गम्भीरतापूर्वक प्रयास कर लें, किन्तु सब निरर्थक हो जाते है।

कैसे प्राप्त करें? इस प्रश्न से यह अवधारणा दीखती है कि हम परमात्मा को पहले से जानते है और उसके लिए साध ान जानना चाहते है। एवं आत्मा शब्द के बारे में ध ारणा रखने के उपरान्त ही कैसे शब्द का प्रयोग सम्भव हो पाता है। जब अपने समक्ष कोई वस्तु रखकर प्रवृत्त होते है तो क्यों और कब करते है कि जब उस विषय के बारे में स्तुति सुनी है कि उसकी प्राप्ति से हमारा जीवन उत्कर्ष को प्राप्त होगा। ऐसी प्रेरण ाा से युक्त होकर ही किसी साधन का आश्रय लेते है। यह ही कर्म के क्षेत्र के दोष है। किसी लक्ष्य को सामने रखकर प्रवृत्त तो वहां अपनी पूर्णता की प्राप्ति के लिए किसी चीज को साधन समझते है। हमने यह विश्वास रखा है कि इस साधन से साध्य की प्राप्ति और उसे प्राप्त करने के उपरान्त सिद्ध होगे। इस प्रकार अपूर्ण व्यक्ति द्वारा ही पूर्ण बनने के लिए साधन का आश्रय लिया जाता है तथा दीनता से प्रेरित बडप्पन की प्राप्ति करना चाहता है। हम किसी भी साधन का आश्रय लेकर अपनी दीनता व अपूर्ण ाता को दृढ करते है। इस बात को जहां समझा तो अज्ञान की विनम्रता होने लगती है। हमें आज लक्ष्य के बारे में नहीं पता तथा न तो हम कौन है यह पता है अतः हमें क्या चाहिए यह नहीं पता। यह अज्ञान का एहसास होता है, और यह ही विनम्रता लाता है। समस्त

साध्य-साधन निरपेक्ष ब्रह्म

साधनों की निरर्थकता का भान होने लगता है। अतः समस्त से संन्यस्त होने लगते है।

संन्यस्तता ही समग्रता लाता है जिससे ज्ञान का द्वार खुलता है। यहां किसी तरह का साधन नहीं बताया जाता है, क्योंकि ब्रह्म साधन-निरपेक्ष है। उसके लिए किसी साधन का प्रयोग अपने से दूर होने की मान्यता की ही पुष्टि है। कैसे शब्द में साधन विशेष के प्रति सुरक्षा के लिए आश्रित होना दीखता है। कैसे शब्द से परमात्मा के बारे में कल्पना का अस्तित्व दीख्ता है। कैसे शब्द से परमात्मा को साधन के आश्रय से भविष्य में पाने की उत्कंठा अर्थात् परमात्मा को काल के अन्तर्गत की वस्तु मानना दीखता है। इसके अलावा कर्मविशेष की अपेक्षा दीखती है कि जिससे वे प्राप्त होगें, अर्थात् परमात्मा हमारे प्रयासों का फल हो सकता है, यह मान्यता दीखती है। परन्तु सत्य तो यह है कि परमात्मा देश, काल और वस्तु की सीमाओं से परे होने की वजह से हमारे प्रयासों का फल नहीं है, न तो साधन के द्वारा प्राप्त करने योग्य है।

वस्तुतः इन समस्त धारणाओं से परे जहां मात्र 'जो हैं' उसे जानना मात्र ही है। वर्तमान की अपने बारे में जो जीवत्व की, क्षुद्रता की अस्मिता उत्पन्न करी है, उसे अच्छी प्रकार से समझें। जीव अपने बारे में एक काल्पनिक अस्मिता मात्र है। इसे कल्पना जान कर उसके मिथ्यात्व का निश्चय करें। जहां जीव जो किसी साधन के प्रयोग से जानना चाहता है, उस जीव का ही निषेध होना है। यह जीवत्व जहां बाधित हुआ तो जो भी सत्य है, वह स्वतःसिद्ध है। उसे जानने के लिए किसी साधन की अपेक्षा नहीं है। अतः यह कहा गया कि जो पूर्णरूप से संन्यस्त हो पाता है, वह ही इसे अपने स्वस्वरूप की तरह जान लेता है। अतः कैसे प्राप्त करें, इस प्रश्न के बजाय समस्या का स्वरूप समझें और जो प्राप्त करनेवाला या जाननेवाला जीव है, उसी पर प्रश्नचिह्न लगाना चाहिए। उस पर शास्त्र प्रमाण से गहराईपूर्वक विचार कर, उसके मिथ्यात्व का निश्चय होने पर जो शेष रहता है, वही 'मैं' तरह स्थित परमात्मा हैं। इस प्रकार निषेध की अवधि रूप जानना ही उसका समाधान है।

"परमात्मा को कैसे जानें, यह प्रश्न मन के अन्दर पूर्व से ही परमात्म के बारे में कुछ न कुछ अवधारणा को दीखाता है। यह अवधारणा ही सत्य के ज्ञान में बाधा बनती है।"
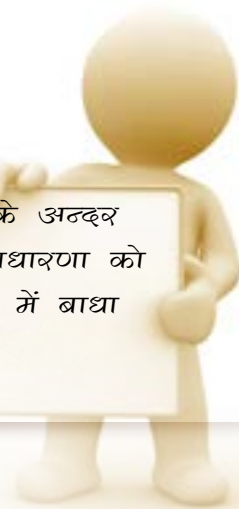
राम नवमी की शुभकामनाएं
(30 मार्च 2023)

वेदान्त लेख
अहम् ब्रह्मास्मि

जीव से ईश्वर तक

उपनिषद् प्रतिपादित ब्रह्मविद्या खण्ड से अखण्डता की यात्रा कराता है। खण्ड में रहना ही द्वैत अर्थात् संसार का सूचक है। अखण्ड स्वरूप में जगना संसार के मुक्ति का लक्षण है।

यद्यपि अखण्ड रूप तत्त्व ही सत्य है और उसमें जाग्रति ही हमारा लक्ष्य है। तथापि उपनिषद् में अनेकों स्थान पर अपने हृदय में विद्यमान दो आत्मा का भी परिचय मिलता है। उसे कहीं पर एक वृक्ष पर स्थित दो पक्षी की तरह बताते है तो कहीं दो हस्तियां जो फल का भोग करनेवाली बताई जाती है। समस्त फसल व खेती इसी हृदय में ही होती है। जो ढूंढ रहा है और जिसे ढूंढा जा रहा है वे दोनों ही इसी हृदय गुहा में विराजमान हैं।

जो ढूंढ रहा है, वह सतत कर्मफल का पान कर रहा है, और उसके माध्यम से पूर्णता, परमानन्द व मुक्ति को खोज रहा है। कर्मफल को ग्रहण करना जगत की व्यवस्था का अंग है। जिसे खोजा जा रहा है वह कर्मफल देनेवाला ईश्वर हैं। एवं कर्ता-भोक्ता जीव और कर्मफलदाता ईश्वर यह दोनों इसी हृदयगुहा में विराजमान है। जिस कर्मफलदाता को आरम्भ में जीव बाहर कहीं और कल्पना करता है, उसके बारे में शास्त्र इस तथ्य को उजागर करते हैं कि वह ईश्वर भी इसी हृदयगुहा में ही हैं। 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति।' अर्थात् कर्मफलदाता, जगत का नियन्ता ईश्वर सब के हृदय में विराजित हैं। यह युक्तिसंगत भी है कि ईश्वर को कर्मफलदाता होने के लिए अन्तर्यामी साक्षी की तरह सबके हृदय में होना चाहिए। किन्तु ऐसा भी नहीं है कि सर्वान्तर्यामी अनेक है। वस्तुतः एक ही चेतना सर्वान्तर्यामी की तरह विराजमान है। इस प्रकार कर्मफलभोक्ता जीव और ईश्वर दोनों एक ही स्थान में है। वे दोनों किस रूप में है - इसे समझना चाहिए। ये दोनों उपहित चेतना अर्थात् विशिष्ट अभिव्यक्तियां है। दोनों का आश्रयभूत तत्व भी यहीं पर विद्यमान है।

हृदय हमारी एक दुनिया है। हृदयाकाश में समस्त खेल चल रहा है। बाहर की अभिव्यक्तियां तो मात्र कार्यरूपा है। समस्त अनुभूतियां - विविध खण्डादि, सुख-दुःख, बन्धन-मुक्ति आदि यहीं होता है। जीव उसका रसपान करनेवाला भोक्ता है। अन्य उससे विलक्षण अर्थात् प्रकाश और छाया की तरह अत्यन्त विलक्षण है। अन्तर्मुख होकर हृदयाकाश में थोडी देर स्थित रहने पर यह दोनों दीखाई पडते है। एक मैं जो प्यासा है व चेष्टा करता है। दूसरा जो निश्चेष्ट विद्यमान है। एक ही

जीव से ईश्वर तक

स्थान पर यह दोनों, परिवर्तन में अपरिवर्तनशील सत्ता है। जो परिवर्तन है, यह मन का धरातल है, यह मन हम नहीं है। उसके दृष्टा बनकर देखें। हम वो सूर्य जो इन समस्त लहरों को प्रकाशित कर रहा है। इस अपरिवर्तनशील का कान्शियस होना चाहिए। परिवर्तन का आवागमन जिस प्रकाश में देख रहे है; हम वो अपरिवर्तनशील प्रकाश है। हममें कोई परिवर्तन नही, उसे देखें। एक नित्य दूसरा अनित्य, प्रकाश अन्धकार, जड चेतन दोनों को अपने हृदयाकाश में देखें। इन दोनों को यथावत् देखें। जो परिवर्तन करने का इच्छुक है, वो कर्म का आश्रय लेने वाला कर्ता-भोक्ता खण्ड व मोह में होता है। अपने बारे में विपरीत ज्ञान में ही कर्म की प्रेरणा होती है। जब स्वयं की कर्ता-भोक्ता जीव की तरह ही अस्मिता बनी है, तब वह कर्मफलदाता ईश्वर की तरह, जब स्वयं को एक नियत्रित की तरह तो वे नियन्ता की तरह स्थित रहते है।

अपने बारे में यथार्थ से अनभिज्ञ तथा परिवर्तनशील अनित्य में सत्यता व महत्व की बुद्धि से युक्त रहते है, तब तक संसार के हेतुभूत खण्ड की अवस्था बनी रहती है। जो नित्य को देखता है - वह सत्य को जानता है। उसके लिए बाकी सब उपेक्षित हो जाता है। सत्य ही अपरिवर्तनशील है, उसके अलावा कोई वृत्ति नही। एवं दोनों अत्यन्त विलक्षण स्वभाव के है। उनके हर धरातल पर विलक्षणता है। जगत की समस्त वस्तु यही एकमात्र नित्य तत्त्व से व्याप्त होती है। जो इसे जानता है वो ब्रह्मभाव में जग जाता है। इस प्रकार समस्त खण्ड की समाप्ति होकर अखण्ड स्वरूप ब्रह्म में जाग्रति होती है। इस खण्ड से परे अखण्डता की यात्रा ही ब्रह्मविद्या है।

आयुषः क्षण एकोऽपि
सर्वरत्नैर्न लभ्यते।
नीयते स वृथा येन
प्रमादः सुमहामोहो।।

भावार्थ : आयु का एक क्षण भी समस्त रत्नों को देने पर भी प्राप्त नहीं हो सकता है। इसलिए उसे प्रमादवश व्यर्थ में नष्ट कर देना महान मोह है।

श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

शक्यः सर्वनिरोधश्चेत्
समाधिर्ज्ञानिनां प्रियः।
तदशक्तौ क्षणं रुद्ध्वा
श्रद्धेया ब्रह्मतात्मनः॥

ज्ञानियों की प्रिय समाधि समस्त विकल्पों के निरोध से ही हो सकती है, यदि सब विकल्पों का सदा के लिए निरोध नहीं कर सकते तो क्षण भर के लिए भी श्रद्धालु को रोक कर अपनी ब्रह्मस्वरूपता का निश्चय अवश्य कर लेना चाहिए।

लघु वाक्यवृत्ति

पूर्व श्लोक में आचार्य ने बताया कि सविकल्पक चेतना है, वह अहं पद का वाच्यार्थ जीव है, और निर्विकल्प चेतना अहं पद का लक्ष्यार्थ ब्रह्म है। निर्विकल्प ब्रह्म के साक्षात्कार हेतु इन स्वत:सिद्ध विकल्पों के प्रवाह को बलपूर्वक रोकना चाहिए। स्वत:सिद्ध विकल्प अर्थात् दर्पण में प्रतिबिम्ब की तरह से जो सहजरूप से अहंवृत्ति की तरह स्थित है। यह एक चिज्जड़ ग्रंथि वा उपहित चेतना विद्यमान है। उसका निरोध करने का आशय आत्म-अनात्म विवेक करके अनात्मधर्म के मिथ्यात्व का निश्चय करना है। इस प्रकार अनात्मधर्म का निषेध हो जाने पर स्वप्रकाश सत्ता का ज्ञान होता है।

यही ज्ञानियों को प्रिय समाधि अर्थात् अखण डाकार वृत्ति है। इस ज्ञानवृत्ति में समस्त अनात्मा बाधित होकर एक शुद्ध चेतना का संज्ञान होता है। यहां भोक्ता व ज्ञाता पृथक् खड़े रहकर ज्ञातृत्व के अभिमान से युक्त नहीं है। भोक्ता में आरोपित भोक्तृत्व बाधित हो गया। अत: हमने ब्रह्म को जाना - इस प्रकार अपने से पृथक् विषय की तरह फलव्याप्ति नहीं होती है, अपितु मैं ही ब्रह्म हूं।' यह रियलाइजेशन होता है।

इस प्रकार अपने पर से अध्यारोपों का पूर्ण अपवाद हो जाने पर अधिष्ठान का ज्ञान होता है। यह अध्यारोप अत्यन्त सूक्ष्म है। यदि अपवाद नहीं कर पाते है, तो इसका अभिप्राय जीव होकर ब्रह्म को अपने से पृथक् मानकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहते है। ऐसे में जीव में कुछ विशेष अनुभूति आदि की आकांक्षा बनी हुई है। यह भोक्तृत्व ही बाधा बनता है। इस कारण से जीव की संकुचिता,

लघु वाक्यवृत्ति

ग्राह्यता आदि का अस्तित्व बना हुआ है। उसका अपवाद होने में एक अज्ञात भय सा प्रतीत होता है। 'अहं ब्रह्मास्मि' का संज्ञान नहीं हो पा रही है।

अत: आचार्य बताते हैं कि तदशक्तौ....... श्रद्धेया ब्रह्मतात्मन:। यदि अपने उपर से पूर्णत: अध्यारोपों को बाधित करने में समर्थ नहीं है, तो अपने बारे में ब्रह्म होने की श्रद्ध ा को दृढ़ करने की आवश्यकता है। ब्रह्म सर्वत्र, सर्वात्मा की तरह विराजमान है। अत: हमारी भी आत्मा है, यह जानते हुए अपनी ब्रह्मस्वरूपता की श्रद्धा को दृढ़ करें। इस श्रद्धा की दृढ़ता के साथ अपने जीवभाव पर विवेक करके क्षणभर के लिए ही जीवभाव के मिथ्यात्व का निश्चय करके देखें। तब इसके सतत अभ्यास से शनै: शनै: निश्चय में दृढ़ता होती जाती है। अन्तत: समस्त विकल्पों का निषेध होकर निर्विकल्प ब्रह्मस्वरूपता में स्थिति होती है।
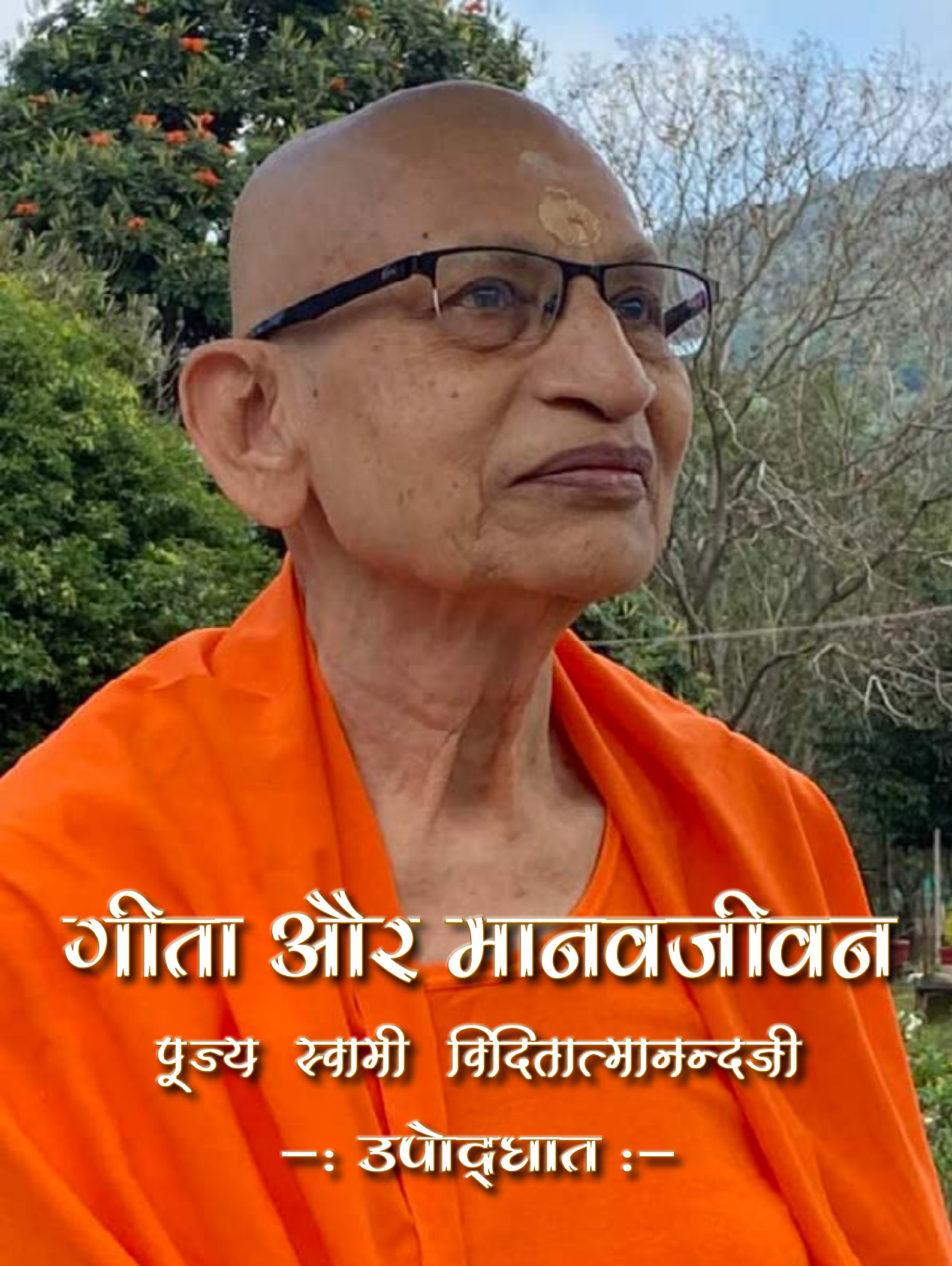
गीता और मानवजीवन
पूज्य स्वामी विदितात्मानन्दजी
—: उपोद्‌घात :—

गीता और मानवजीवन

मानवता – मनुष्य का स्वभाव :– भगवद्गीता भिन्न-भिन्न दृष्टि से मनुष्य का अत्यन्त सुन्दर चित्र अपने समक्ष प्रस्तुत करती है – मनुष्य किसे कहते है? सफल मनुष्य कैसे बनते है? सिद्ध पुरुष का लक्षण क्या है? मनुष्यजीवन का लक्ष्य क्या है? इस लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए हमें अपने जीवन का संचालन कैसे करना चाहिए? इत्यादि।

गीता मनुष्य को जीवन संचालन की एवं जीवन निर्माण की कला सीखाती है। मनुष्य में निहित स्वाभाविक सुन्दरता अभिव्यक्त हो सके, उसके लिए जीवन का संचालन कैसे होना चाहिए! जब एक शिल्पकार किसी पत्थर से मूर्ति को आकार देता है, तब वह पत्थर में निहित स्वाभाविक, सुन्दर प्रतिमा को स्पष्ट दर्शन कर सकता है, जिसे एक आम मनुष्य नहीं कर पाता है। शिल्पकार अन्ततः उस निहित सुन्दर मूर्ति को उजागर कर देता है, और उसके लिए पत्थर के अनावश्यक अंश को ही मात्र दूर करता है, पत्थर में विद्यमान, स्वाभाविक अव्यक्त मूर्ति को ही मात्र व्यक्त करता है। जीवन निर्माण की कला भी ठीक उसी प्रकार की है। मनुष्य में जो पहले से विद्यमान है, किन्तु किसी कारण से व्यक्त नहीं है, उसे व्यक्त करना है।

आद्य शंकराचार्यजी एक अन्य दृष्टान्त देते हैं। जैसे चन्दन की लकड़ी दीर्घकाल तक जल के सम्पर्क में रहने पर उसमें से दुर्गन्ध आती है। क्या वह स्वभावतः दुर्गन्ध से युक्त है? नहीं! यह दुर्गन्ध किसी अन्य निमित्तवशात् है। दुर्गन्ध से युक्त उसी लकड़ी को पत्थर पर घिसने पर उसकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है और चन्दन की स्वाभाविक सुगन्ध अभिव्यक्त होती है। न ही चन्दन को कोई बाहर से सुगन्ध प्रदान की गई है, और न ही दुर्गन्ध उसका स्वभाव है

गीता और मानवजीवन

कि जो पत्थर पर घिसने के कारण दूर हुई हो। जिस निमित्त से उससे दुर्गन्ध प्रसर रही थी, वह निमित्त ही घर्षण की प्रक्रिया से दूर होने की वजह से, उसकी जो स्वाभाविक सुगन्ध है, वही अभिव्यक्त होती है।

जीवन निर्माण की कला भी कुछ इसी प्रकार की है। ऐसा नहीं है कि मनुष्य को कहीं बाहर से सुन्दरता प्राप्त करनी है। उनमें मनुष्यत्व तो है ही। मनुष्यत्व होने की वजह से ही वह मनुष्य कहलाता है। ऐसा कौन मनुष्य है, जिसमें प्रेम नहीं है? जिसमें भावना व करुणा नहीं है, जिसे सत्य, अहिंसा आदि प्रिय नहीं है? निश्चित रूप से ऐसा कोई भी नहीं होगा। जिसे हम अत्यन्त क्रूर भी कहते है, उसे भी क्रूरता प्रिय नहीं होती। यद्यपि किसी व्यक्ति को हम क्रूर, भावनाविहीन मान लेते हैं, किन्तु सत्य तो यह है कि उसमें भी भावना होती है। किसी अवरोध की वजह से उसकी स्वाभाविक भावना व्यक्त नहीं हो रही है। सामान्यत: क्रूर व निष्ठुर दीखनेवाले मनुष्य में से किसी तरह से यह अवरोध दूर होने पर उसके अन्तर्गत की निहित प्रेम व भावना व्यक्त होती है। उसीका छोटा बालक, मित्र, या उसकी पत्नी उसके समक्ष आने पर उसकी भावना स्वत:, तत्क्षण प्रकट हो जाती है। यह भावना कहां से आती है? यदि स्वभाव से ही निष्ठुर होता तो उसमें प्रेम व भावना कैसे हो सकते थे? यही दीखाता है कि प्रेम व भावना स्वाभाविक है। मनुष्यत्व मनुष्य के लिए स्वाभाविक और सुन्दर वस्तु है।

चन्दन में जो दुर्गन्ध प्रतीत हो रही है, या मनुष्य में जो क्रूरता व कठोरता प्रतीत होती है, वह स्वाभाविक नहीं है। स्वाभाविक वही होता है, जिसके प्रति प्रेम होता है। क्रूर या कठोर व्यक्ति को भी क्रूरता प्रिय नहीं है। कोई उसके प्रति क्रूरता दीखाता है, तो उसे स्वीकार नहीं होता है और न उसे सहन कर पाता है। जो मनुष्य झूठ बोलने का आदि है, अनैतिक है, उसे भी असत्य, अनैतिकता प्रिय नहीं है। कोई

गीता और मानवजीवन

उसके साथ झूठ या अनैतिकतापूर्ण आचरण करे तो यह उसे स्वीकार्य नहीं है। वह स्वयं अन्य की हत्या करने में संकोच नहीं करता है, तथापि उसे हिंसा प्रिय नहीं है। वह स्वयं हिंसा का शिकार बनने या मरने को तैयार नहीं है। क्योंकि स्वयं की हिंसा हो या हानि पहुंचे – यह उसे पसंद नहीं है, यही दीखाता है कि उसे हिंसा प्रिय नहीं है। एवं जो हमें प्रिय हो, वही हमारा स्वभाव है, जो हमें प्रिय नहीं है, वह हमारा स्वभाव नहीं है। असत्य और हिंसा वह हमारा स्वभाव नहीं है, सत्य और अहिंसा ही हमारा स्वभाव है। जिस तरह चन्दन के लिए सुगन्ध प्राप्त करना मुश्किल नहीं है, क्योंकि उसका स्वभाव है, वैसे ही मनुष्य के लिए मनुष्य बनना भी मुश्किल नहीं है, क्योंकि मनुष्यत्व उसका स्वभाव है। अपने इस मूल स्वभाव को कैसे प्राप्त करना यह कला हमें भगवद्गीता सीखाती है।

– ३१ –
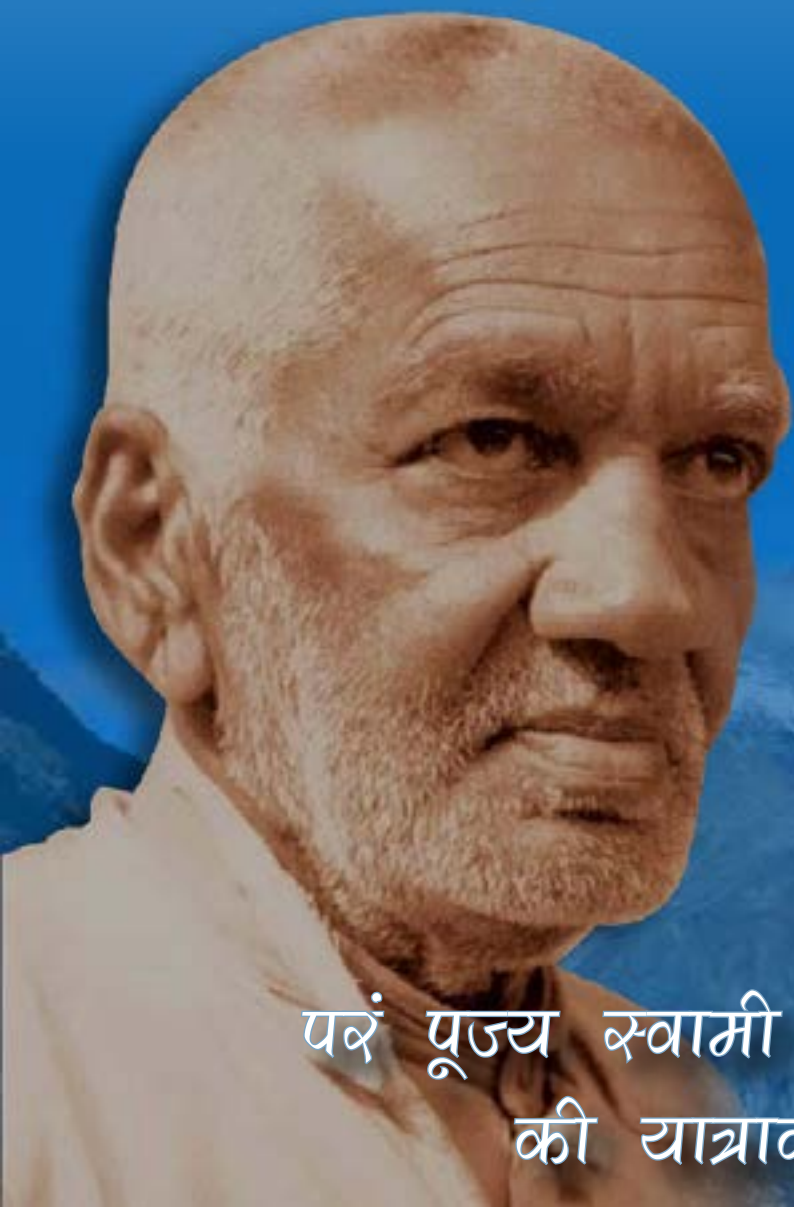
उत्तरकाशी

परं पूज्य स्वामी तपोवन महाराज
की यात्राके संस्मरण

जीवन्मुक्त

उत्तरकाशी से लगभग तीस मील उत्तर की ओर गंगोत्री और जम्नोत्री के बीच बहुत उंचे पर्वतों से आवृत दस हजार फुट की उँचाई पर ‘ढुण्ढी सरोवर’ नामक एक झील है। ‘ढुण्ढी ताल’ के नाम से प्रसिद्ध यह सरोवर प्रकृति विलास का केलि स्थान है, और अति पवित्र और मुख्य तीर्थस्थान है। पर कोई तीर्थयात्री उसे जानता नहीं; उधर जाता भी नही। कारण यह कि वहाँ जाने के लिए लोगों के आवागमन का अच्छा मार्ग नहीं है। पहाडी लोग पचासों या सैकडो की संख्या में मिलकर दो तीन सालों में एकबार अपने देवता के साथ उसे स्नान कराने के लिए वहाँ जाते है। इसके सिवा और कोई व्यक्ति उस ओर यात्रा नही करता। यद्यपि उस सरोवर का भ्रमण बहुत ही विकट और साधारण मनुष्य के लिए असाध्य है, और वहाँ तक पहुँचने में भयानक वनों को पार करना पडता है। किन्तु मै तो प्रकृति सौंदर्य का प्रेमी हूँ। इसलिए सब कुछ ईश्वर के सामने समर्पित कर निश्चिंत एवं निर्भीक होकर उस सरोवर में जाकर स्नान करने की इच्छा से निकल पडा। सन् 1928 के अक्टूबर महीनें में उत्तरकाशी से मै इस वन विहार के लिए तैयार होकर निकला था। उत्तरकाशी से दुसरे चार पाँच साधु भी इस सैर के लिए तैयार हुए और हम सब रवाना होकर पहले दिन दस मील की दूरी पर ‘मंजोली’ नामक एक गाँव के देव मंदिर में रहे। सरोवर की ओर सैर करने की इच्छा से इस तरह निकल पडना ही इस गाँव के कुछ भक्तजनों की प्रार्थना तथा प्रेरणा से हुआ था। सरोवर का पूरा पता भी मुझे उनके द्वारा ही मिला था। इसलिए उस गाँव के चार मुखिया लोग वहाँ

जीवनमुक्त

से उपर की यात्रा में सहायता देने के लिए हमारे सहचारी होकर साथ आये। परन्तु गाँव के कुछ बुजुर्गो और औरतों ने सलाह दी थी कि हमें उपर नही ले जाना चाहिए। सरोवर देवों का निवास स्थान है, बडा ही गोपनीय है। इसलिए वहाँ मनुष्य नहीं जा सकते। यदि कोई साहस के साथ वहाँ जाता है तो वहाँ मलमूत्र विसर्जन, खाना पकाना और नींद लेना आदि उनके अशुद्ध कर्मो के कारण वह देवभूमि अपवित्र हो जाती है। ऐसी अशुद्धि को दूर करने के लिए उनके रहने के दूसरे दिन अवश्य ही भयानक वृष्टि होती है। वृष्टि में पत्थर बरसते हैं और समीपवर्ती नीचे के सभी गॉवों की सारी फसलें विनष्ट हो जाती है। ये ही वहाँ के पर्वतीय लोगों का प्रबल तर्क था। ऐसे ही लोगों ने इस विश्वास पर हमारे प्रस्थान रोकने का प्रयत्न किया था कि हमें लेकर उपर जाने से वृष्टि अवश्य होगी और उपलों के निपात से पके हुए सारे अनाज नष्ट हो जाने से हमारा गाँव गरीबी में डूब जाएगा।

लेकिन हमारे पक्षका समर्थन करने वाले साहसी लोगों का भी एक दल उस गाँव में था। उनका तर्क था कि महात्मा लोग ही सरोवर में स्नान करने जाते है। महात्माओं पर देवों की कोई अप्रीति नही हो सकती, और महात्माओं की महिमा तथा तपोबल से ग्राम की उन्नत्ति होती है। इनकी यात्रा में सहायता पहुँचाना ग्राम के लिए अमंगल नही हो सकता। जो भी हो, हम महात्माओं की महिमा तथा सिद्धि पर उन परिजनों में भी श्रद्धा जगाकर, किसी प्रकार उनकी भी पूर्ण सम्मति लेकर, उपर्युक्त चार व्यक्ति हमारे मार्गदर्शक बनकर चले थे। यात्रा में कोई अमंगल न हो, इसके लिए उनके ग्रामदेवताओं से उन्होंने और हमने हृदयपूर्वक प्रार्थना की और इसके बाद हम वहाँ से रवाना हुए। विषम परिस्थीतियों में ईश्वर ही सब की गति है। किसी विषमता में पड जाने पर लोग ईश्वर का जितनी शुद्धता, दृढता और अनन्यचित्तता के साथ स्मरण और प्रार्थना करते हैं उतनी ही दृढता के साथ साधारण काल में भी यदि स्मरण किया जाता है तो वे ईश्वर सायुज्य के योग्य बन जाते है।

एक फूल की रंग-बिरंगी पंखुडियों ने,
उंगलियों से अपनी सूरज को है छूआ।
सूरज ने बिखरा दिया अपना समस्त उजाला उस पर,
जैसे उसे जीवन मिल रहा हो खुशनुमा हवा भर।
उसकी आंखों में बढ़ी थी चाहत कि,
वह सूरज की किरणों को नशा करता जाएं।

सूरज ढलते ढलते अपना उजाला छोड गया,
फूल ने भी सोने की डिबिया खोल समेट लिया।
फिर से नई उमंगों से भरा फूल उठ खड़ा हो गया,
उसकी खुशियां नए संगीत से सब के मन को भर रहा।

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री शत्रुघ्न चरित्र

– 03 –

रिपुसूदन पद कमल नमामी।
सूर सुसील भरत अनुगामी।।

श्री शत्रुघ्न चरित्र

मानस में शत्रुघ्न सच्चे अनुगामी की भांति श्री भरत के मूक समर्थक के रूप में सामने आते हैं। श्री भरत के राज्यपद स्वीकार करने के पक्ष या विपक्ष में बोलते हुए भी वे नहीं दिखाई देते। चित्रकूट की यात्रा में भी उनका महामौन अक्षुण्ण है। वे पीरी तरह समर्पित भाव से उस निर्णय की प्रतीक्षा करते हैं, जो उनके आचार्य और प्रभु के मध्य में स्नेह के दो पक्षों के रूप में छिड़ा हुआ था। श्री भरत ने प्रभु के समक्ष जो विकल्प प्रस्तुत किए थे उसमें एक यह भी था कि यदि प्रभु चित्रकूट से लौटनास्वीकार करें तो वे स्वयं (श्री भरत) और शत्रुघ्न उनके बदले वन में रहने के लिए कटिबद्ध हैं। श्री भरत ने बिना शत्रुघ्न की अनुमति लिए हुए जिस प्रकार उनकी और से स्वीकृति दे दी, वह उनकी और शत्रुघ्न की अनन्यता का परिचायक है। और जब श्री भरत के अयोध्या लौटने का निर्णय हो जाता है तब बिना किसी ननु-नच के वे उनके साथ लौट आते हैं। श्री भरत के तपस्वी जीवन और राज्य संचालन में वे प्रतिक्षण उनके साथ हैं। रामराज्य की आधार शिला में जिन समर्पित व्यक्तियों ने स्वयं को नींव में अर्पित कर दिया, उनमें शत्रुघ्न अग्रगण्य हैं। मानस में इसके पश्चात् शत्रुघ्न के जीवन की किसी घटना का उल्लेख नहीं है। पौराणिक कथाओं में वे तब अवश्य महान् यो़ा के रूप में सामने आते हैं जब मथुरा को लवणासुर के अत्याचार से मुक्त करने का कार्य उन्हें सोंपा जाता है। तब वे उसका वध कर मथुरा को मुक्त करने का श्रेय प्राप्त करते हैं। मथुरा राज्य के संचालन का भार भी प्रभु के द्वारा उन्हीं को दिया गया। युद्ध और राज्य के संचालन की यह घटनाएं इसी तथ्य की पुष्टि करती हैं कि उनके जीवन का महामौन असामर्थ्य या अयोग्यता से उत्पन्न नहीं था। हर परिस्थिति में उनका मौन भी उनकी अलौकिक गाथा ही दर्शाता है। उनके व्यक्तित्व से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने सबसे प्रबल शत्रु जिससे महान् से महान् यो़ा भी पराजित हो जाता है, ऐसे अहं रूपी शत्रु के उपर विजय प्राप्त की हुई है। ......इति।

पौराणिक गाथा

भगवान विष्णु की अनन्य भक्ति

भगवान विष्णु की अनन्य भक्ति

पुराणों के अनुसार एक बार भगवान विष्णु महादेव का पूजन करने के लिए काशी में आएं। मणिकर्णिका घाट पर स्नान करके उन्होंने 1000 कमल के पुष्प से महादेवजी का पूजन-अर्चन करने का संकल्प किया। उसके लिए वे स्वयं 1008 पुष्प चुन करके लाएं। महादेवजी का अभिषेक करने के उपरान्त जब उन्होंने अर्चना आरम्भ की, तो महादेवजी ने कौतुक करने के लिए प्रेरित होकर उसमें से एक कमल चुरा लिया।

भगवान विष्णु को अपने संकल्प की पूर्ति के लिए 1000 पुष्प चड़ाने थे। जब उसमें से एक पुष्प की कमी देखी तो वे असमंजस में पड़ गएं। यदि पुष्प को लाने के लिए उठते हैं तो अनुष्ठान खण्डित होता है। किन्तु तत्क्षण भगवान ने विचार किया कि, हमारे भक्तजन हमें पुण्डरीकाक्ष अर्थात् कमलनयन नाम से पुकारते हैं। अतः कमल के स्थान पर क्यों न अपने नयन को ही महादेवजी के चरणों में अर्पित कर दूं! यह सोचकर वे जैसे ही अपने दाहिने नेत्र को महादेवजी के चरणों में चड़ाने के लिए तैयार हुएं, उसी क्षण महादेवजी वहां प्रकट् होकर बोलें कि, 'नारायण! आप जैसा वा आपसे अधिक हमारा कोई भी इस जगत में भक्त नहीं हैं।' भगवान् शिव नारायण की अनन्य भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें सुदर्शन चक्र प्रदान किया और कहा कि यह चक्र जगत में असुरों को तथा आसुरी शक्तियों का विनाशक होगा। इस प्रकार भगवान विष्णु को सुदर्शन चक्र प्राप्त हुआ।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

आश्रम समाचार

महाशिवरात्री वेदान्त शिविर

पंचदशी - नाटक दीप प्रकरण

आश्रम समाचार

ध्यान एवं श्लोकपाठ
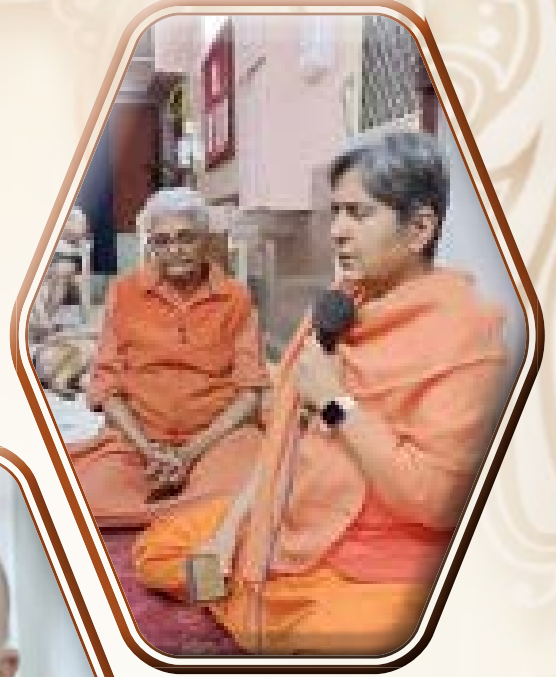
आश्रम समाचार

भजन एवं प्रश्नोत्तरी

आश्रम समाचार

भोजन - प्रसाद

आश्रम समाचार

मञ्जु भैया के हसगुल्ले

आश्रम समाचार

शिविर समापन - धन्यता अभिव्यक्ति

शिविरार्थी की ग्रुप फोटो

आश्रम समाचार

भक्तों द्वारा रुद्राभिषेक

आश्रम समाचार

महाशिवरात्री पूजा-अभिषेक
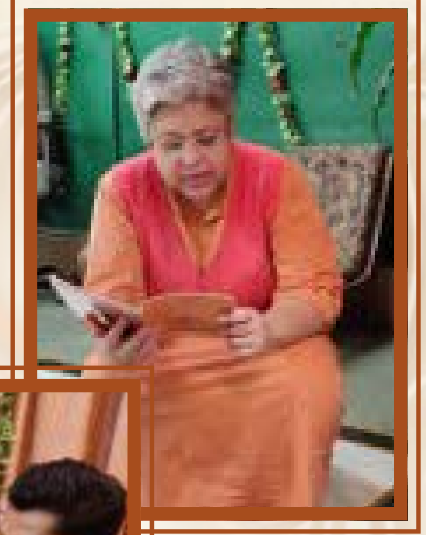
आश्रम समाचार

श्री गंगेश्वर महादेव शृंगार

आश्रम समाचार

फुर्सत के क्षणों में चर्चा

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

श्रीमद् भगवद् गीता

(शांकर भाष्य समेत) नित्य कक्षाएं

वेदान्त आश्रम, इन्दौर

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी

श्रीमद् भगवद् गीता

साप्ताहिक कक्षाएं / प्रति शनिवार

वेदान्त आश्रम, इन्दौर

पूज्य स्वामिनी अमितानन्दजी

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

गीता ज्ञान यज्ञ

जलगांव

स्वामिनी पूर्णानन्दजी के द्वारा

14 से 20 मार्च 2023

गीता ज्ञान यज्ञ

औरंगाबाद

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी के द्वारा

25 मार्च से 1 अप्रैल 2023

Internet

Talks on (by P. Guruji):

Video Pravachans on YouTube Channel

~ Gita Ch. 12

~ Gita Ch. 17

~ Sadhna Panchakam

~ Drig-Drushya Vivek

~ Upadesh Saar

~ Atma Bodha Pravachan

~ Sundar Kand Pravachan

~ Prerak Kahaniya

~ Ekshloki Pravachan

~ Sampoorna Gita Pravachan

~ Kathopanishad Pravachan

~ Shiva Mahimna Pravachan

~ Hanuman Chalisa

~ Laghu Vakya Vrittu

(Sw. Amitananda in Guj)

~ Gita Ch. 5

(Sw. Amitananda in Guj)

Vedanta Ashram YouTube Channel

Vedanta & Dharma Shastra Group

Monthly eZines

~ Vedanta Sandesh - Mar '23

~ Vedanta Piyush - Feb '23